हरिश्चंद्र पाण्डे का काव्य : मानवीय सरोकार

रवीन्द्रनाथ मिश्र.

मनुष्य की दृढ इच्छा एवं सर्जन शक्ति, मुक्ति का अहसास, ईमानदार कोशिश, धैर्य धारण की क्षमता एवं उसकी फलश्रुति, परिश्रम की सार्थकता आदि मानवीय मूल्यों, विचारों और भावों को केन्द्र में रखकर कवि ने 'परिवर्तन', 'खिलना एक कमल का', 'मुक्ति', 'धैर्य', 'दुनिया', आदि कविताएं लिखी हैं जिनमें व्यक्ति एवं मानवजाति का कल्याण सर्वोपरि है।

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

बीसवीं सदी के अवसान पर हरिश्चंद्र पाण्डे ने हिंदी कविता में धीमे से एक नए तेवर के साथ दस्तक दी है । समय और समाज के तापमान को भांपते हुए उन्होंने कविता में आसपास की छोटी मोटी बिखरी हुई सामान्य चीजों, स्थितियों, घटनाओं आदि को निजी अनुभूतियों का सार्थक एवं संवेदनात्मक जामा पहनाया। हरिश्चंद्र पाण्डे की कविताएं काफी लंबे समय से विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थी, लेकिन कवि रूप में उन्हें विलम्ब से पहचाना गया। स्वभावतः सरल स्वभाव के कारण रातों रात बहुत बड़ा कवि बन जाने की फितरत उनमें नहीं है। वे काव्य सर्जन की आग में तपकर अपनी अनुभूति को खरा बनाने के पक्षधर हैं।

उत्तराखण्ड, अल्मोडा जनपद ,सदीगांव, में २८ दिसम्बर १९५२ को जन्मे हरिश्चंद्र पाण्डे ने एम.कॉम की उपाधि प्राप्त कर भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के इलाहाबाद स्थित प्रधान महालेखाकर कार्यालय में वरिष्ठ लेखाधिकारी के पद पर कार्यरत हैं। अभी तक इनके 'कुछ भी मिथ्या नहीं है' (काव्य पुस्तिका), 'एक बुरुंश कहीं खिला है' (काव्यसंग्रह-१९९९), 'भूमिकाएं खत्म नहीं होती' (काव्यसंग्रह), 'संकट का साथी'(बाल कथा-संग्रह), कुछ कहानियों और कविताओं के अनुवाद आदि बांग्ला, उड़िया, पंजाबी, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपको परिमल सम्मान योजना के तहत कविता के लिए 'कुछ भी मिथ्या नहीं है'के लिए 'सोमदत्त सम्मान' 'एक बुरुंश कहीं खिला है' के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सर्जना पुरस्कार, केदार एवं ऋतुराज सम्मान तथा 'भूमिकाएं खत्म नहीं होती' के लिए कविवर हरिनारायण व्यास सम्मान से सम्मानित किया

जा चुका है।

'एक बुरूंश कहीं खिला है' की कविताएं आसपास के जीवन से जुड़ी विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं, स्थितियों, आदि पर आधारित है, जिसे उन्होंने मानवीय संवेदनाओ से जीवंत बनाया है। एक ईमानदार मध्यवर्गीय नौकरी पेशा व्यक्ति के लिए जीवन की बुनियादी सुविधाओं को सही ढंग से जुटा पाना बहुत मुश्किल होता था। 'भविष्य का यह कमरा अभी बिखरा है अपने चारों ओर/रेत है एक कोने पर और इसे हवा से बचाया जाना है/एक कोने पर सरिया है इसे पानी से बचाया जाना है/ ईंटें बिखरी हुई इधर उधर और कुछ बने दरवाजे भी/ये बरसों से जमा अपनी पहली तारीखें हैं।बहने या जंग लगने से इन्हें बचाया जाना है।'(१)

कवि ने 'अधूरा मकान' कविता की उक्त पंक्तियों के आगे अधूरे मकान को 'ताजा कटे बकरे की छटपटाती देह' कहा है। यहां कवि की स्वानुभूति भावोन्मुख यथार्थवादी संवेदना मध्यवर्गीय आर्थिक संकट से ग्रस्त विवश मानव के प्रति उमड़ पड़ी है। फिर भी वह अधूरे मकान में 'हरे सपनों की झालर लिये यह मकान/इस बस्ती का सबसे खूबसूरत मकान है।' की आशा से पूर्ण मकान की कामना करते हैं। यह है कवि की दृढ़ इच्छा शक्ति और जीवन जीने की जिजीविषा।

'लहू घोड़े', 'देवता', 'परदा', 'परीक्षा कक्ष में' शीर्षक की कविताओं में कवि ने इतिहास के माध्यम से वर्तमान जीवन का चित्र खींचा है। 'पहला पत्थर/आदमी की उदरपूर्ति में उठा/दूसरा पत्थर/आदमी द्वारा आदमी के लिए उठा/तीसरे पत्थर ने उठने से इन्कार कर दिया/आदमी ने उसे/देवता बना दिया।'(२) हिजड़ों पर कविता सम्भवतः किसी कवि ने नहीं लिखी होगी। हरीश्चंद्र पाण्डे की 'हिजड़े' कविता की 'सारी नदियों का रूख मोड दिया जाय इनकी ओर/तो भी ये फसल न हो सकेंगे/ऋतु वसंत का ताज पहना दिया जाय इन्हें/तो भी एक अंकुवा नहीं फूटेगा इनके।'(३)ये पंक्तियां हिजडों के भाग्यहीन जीवन के प्रति मार्मिक संवेदना को व्यक्त करती हैं। पेट की आग बुझाने के लिए वे किस प्रकार बनावटी सौन्दर्य धारण कर लोगों को अपने हावभाव और अदाकदा से रिझाते औरे फुसलाते है। यहा जगदंबा प्रसाद दिक्षित के मुर्दाघर उपन्यास का वह प्रसंग स्मरण हो उठता है, जहां मुंबई की धारावी बस्ती में देह व्यापार करने वाली औरतें अर्थाभाव के कारण किस प्रकार सजधज कर ग्राहकों को आकर्षित करती हैं?

हरिश्चंद्र पाण्डे ने 'लड़का और समय' कविता में जहां प्रातःकाल झाड़ू मारते हुए अवयस्क लडके में समय की नब्ज को पहचानने में एक उम्मीद देखते हैं, वहीं पर 'अठारह की उम्र' में भावनाओं, कामनाओं, इच्छाओं के वेग एवं कुछ कर गुजर जाने का हौसला भरा उत्साह देखते हैं। कहा भी गया है कि उम्र के इस मोड़ पर यदि लड़के को सही मार्गदर्शन नहीं दिया गया तो वह बन भी सकता है और बिगड़ भी। 'अठारह की उम्र में बहुत-कुछ होता है चाहने के लिए/अठारह की उम्र में बहुत-कुछ होता है/बदलने के लिए।'(४) कवि की ये पंक्तियाँ उक्त बातों की पुष्टि करती हैं। 'बच्चे' और 'कलैंडर के पीछे' कविताएं भी बच्चों की मनोभावनाओं को लेकर लिखी गई हैं।

कवि ने बाजारबाद एवं अन्य वैचारिक प्रदूषण के कारण व्यक्ति की पारस्परिक संवेदनहीनता, स्वयं को विज्ञापित करने की ललक, आपसी ईर्ष्या-द्वेष, मतपेटिका में परिवर्तित तुलसी की अयोध्या, तिजारत करने वालों की कुशलता, पूज्य मूर्तियों के खोखले होते हुए विचार, हमारी सांस्कृतिक पहचान नदी-आग के स्वरूप के समक्ष बिगड़ती हुई जातीय संस्कृति, विभाजन की पीड़ा आदि संदर्भों को गहन संवेदना के साथ व्यक्त किया है।

मैंने पूछा नदी से/'तुम्हारा मजहब?'/
नदी कुछ भी नहीं बोली/
बहती रही चुपचाप कुछ पत्थर आये थे
नदी की राह में/
नदी अगल-बगसे सरक कर।
आगे निकल गई कुछ देर बाद मैंने पूछा/
'तुम्हारी भाषा नदी?'/
नदी तब भी कुछ नहीं बोली/

बहती ही रही /
मैंने पहला प्रश्न सनसैंतालीस मे किया था/
दूसरा इकहत्तर के आस पास।
पहली बार मेरे दो टुकडे हुए थे/
दूसरी बार/मेरे टुकड़े के दो टुकड़े नदी/
आज भी उसी तरह से बह रही है।(५)

परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है - 'हरीशचंद्र पाण्डे की कविता में अपना पहाड़, अपना जनपद, अपनी स्मृतियां, अपनी प्रकृति-सब आते हैं पर हमारी बहुलतावादी संस्कृति का सार-मर्म प्रकट करते हुए। 'भाषा' कविता भी कोई भाषायी समस्या पर लिखी कविता नहीं है, वह हमारी सांस्कृतिक बहुलता की, मिली-जुली साझी संस्कृति की अंतरंगता की पहचान कराती है और साथ ही कतिपय व्यवधानकारक लक्षणों को चिन्हित करना चाहती है।

जो डिब्रूगढ़ में दिखी थी पिछले माह/
इस माह जबलपुर में दिखी
स्वेटर की वह बुनाई/
चुपके से उतार ली एक औरत ने/
अपने आदमी के लिए ये कितने नंबर की सलाइयों पर चढ़ी है/
भाषा हमारी/
कि फैलती ही नहीं कि मद्रास में किसी मछुआरे के सीने पर दिखे/
इम्फाल में किसी स्कूल जाते बच्चे के/
दास्तानों पर।(६)

मनुष्य की दृढ इच्छा एवं सर्जन शक्ति, मुक्ति का अहसास, ईमानदार कोशिश, धैर्य धारण की क्षमता एवं उसकी फलश्रुति, परिश्रम की सार्थकता आदि मानवीय मूल्यों, विचारों और भावों को केन्द्र में रखकर कवि ने 'परिवर्तन', 'खिलना एक कमल का', 'मुक्ति', 'धैर्य', 'दुनिया', आदि कविताएं लिखी हैं जिनमें व्यक्ति एवं मानवजाति का कल्याण सर्वोपरि है। 'एक ईमानदार कोशिश/घूमते चाक पर आकार ले रही है/थपथपाई जा रही है/भीतर-बाहर से/पाकर पानी, आंच/सघन हो रहे हैं सूखे बिखरे कण/अर्थ धारण कर रही है दुनिया/उजाले की कामना बना रही है दीया/तृप्ति की कामना मटका/झुकाव के साथ/अपनी ही धुरी पर मथ रही हैं कामनाएं/ न टूटे दीया/बिना उजाला किये/न फूटे मटका प्यास बुझाये बिना।'(७)

कवि की 'इक्कीसवीं सदी की ओर' कविता सत्ता व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करती है। उसमें कवि का कथन है कि एक तरफ इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में विकास की नई-नई योजनाओं पर वाहवाही लूटी जा रही थी और दूसरी तरफ हम रिक्शे पर बैठ कर राजनीति पर बहस कर रहे थे जैसे कि तेरह वर्ष का बच्चा ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर जी-जान से खींच रहा था।

इस दौर के अधिकांश कवियों ने पारिवारिक संवेदनाओं पर कविताएं लिखी हैं। उनमें मां-बाप, पत्नी, भाई-बहन के प्रति प्रेम के विभिन्न रूपों का अंकन हुआ है।हरीश्चंद्र पाण्डे ने 'मां' कविता में पिता को पेड, बच्चों को शाखाएं एवं मां की उपमा छाल से दी है। 'पिता पेड हैं/हम शाखाएं हैं उनकी/मां/छाल की तरह चिपकी हुई है पूरे पेड पर/जब भी चली है कुल्हाड़ी/पेड़ या उसकी शाखाओं पर/मां ही गिरी है सबसेपहले/टुकड़े-टुकड़े होकर।'(८) यहां मां सुरक्षा कवच बनकर आजीवन विषम परिस्थितियों में भी परिवार की रक्षा करती है। इसके अतिरिक्त कवि की अन्य कविताएं नारी जीवन की विविध संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं, जैसे कि 'नृत्यांगना', 'हंसी का अर्थ', 'धूप', 'विलासपुरी मजदूर', 'पहाड़ में औरत', 'वे सीख रहें हैं' आदि।

'नृत्यांगना' कविता की कुल संरचना में नृत्य-रूप,भंगिमांए ,श्रम और सौन्दर्य की छवियां शिल्पी की तरह कवि द्वारा चुनी गयी हैं और उन्हें अनोखी मूर्तता दी गई है। 'कुंतल से पायल तक अनंत झरने/सुर गति लय/अनगिन मुद्राएं।असंख्य भावबोध/अभिव्यक्ति की कई कई मेहराबें/बनाती है नृत्यांगना/ एक लम्बी पहाड़-रात को खोदती है अनथक श्रम-सी/गहरे अंधेरे से सीने में / शरद के कांस - सी लहराती है/ नृत्यांगना।'(९) श्रम में सौन्दर्य के अनेक रूपों का

सघन पर्यवेक्षण हरीशचन्द्र पाण्डे की रूचि का विषय है।

कवि की दूसरी चूल्हे-चक्की की वह नारी है जो धूप की भांति घर-संसार में फैलकर कभी चूल्हे, कभी अंगार, कभी राख तो फिर कभी जूठे वर्तनों से गुजरती हुई दारूण भरा जीवन जीती है। उनकी तीसरी नारी का रूप विलासपुरी श्रमिक मजदूर औरतों का है, जो कि अपने बाल-बच्चों के साथ पेट की आग बुझाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर चक्कर लगाती रहती हैं।

इनके आदमी दिन भर/ गारा बनाते हैं/
ये ढोती रहती हैं /
इनकी जवान आँखों में/ धंस कर देखो
मिट्टी के रीते घड़े वहां/
लगातार बजते मिलेंगे।(१०)

'पहाड़ में औरत' कवि की नारी का चौथा रूप है, जहां कि वह पहाड़ की भांति अपने समय और समाज से लोहा लेती हुई आजीवन जंगल और पहाड को नाथती हुई आजीविका का साधन जुटाती है। कवि की जन्मभूमि और कर्मभूमि क्रमशः पहाडी और मैदानी अंचल होने के कारण उन पर दोनों संस्कृतियों का प्रभाव है। उन्होंने दोनों जगह के समाजों को जिया और भोगा है। औरत को पृथ्वी की संज्ञा तो दी गई है लेकिन पाण्डे ने यहां उसे पहाड़ से सम्बोधित किया है। वस्तुतः दयालुता के साथ-साथ उसकी कठोरता का जिक्र बहुत कम हुआ है।

जमीन को दिन भर नमन करती कमर/
शाम को चूल्हे से होते हुए
बिस्तर तक पहुंचती है जब/
गीली लकड़ी की आग सी
धुआं-धुआं हो जाती है/
पृथ्वी की गोलई समेटे नथनी झूलतीहै/

कवि अपने समय की क्रूरताओं, बर्बरताओं और शोषक प्रवृत्तियों के काले कारनामों एवं उनकी मनोवृत्तियों से भी भलीभांति परिचित है। वे ऐसे लोग हैं जोकि महान कृतियों के कथ्य को अपने हित में मरोड़ देते हैं। सच से खिलवाड़ करने में वे जरा भी हिचकते नहीं। भूखा इंसान उनकी राजनीति का मोहरा होता है जिसके पेट की आग पर वे अपनी राजनीतिक रोटियां सेकते हैं।

इसी दुनिया के भीतर एक दूसरी दुनिया है
जिसे तीसरी दुनिया कहकर पुकारा जाता है
तीसरी दुनिया जब भूख से बिलबिला
रही होती है
वह डकार ले रहा होता है बदहजमी से
जब एक रोटी नसीब होती दिखती है,
तीसरी दुनिया को वह कहता है ये पेटू हैं सब
और फिर हंसता है।(१२)

प्रस्तुत संग्रह की अंतिम कविता 'कसाईबाड़े की ओर' उत्तर आधुनिकता के उस स्वरूप की ओर संकेत करती है, जहां हिंसा ओर आतंकवाद को सुन्दर कहा जा रहा है। अस्त्र-शस्त्र को गहनों की संज्ञा दी जा रही है। अब ऐसा समय आ गया है, कि प्रभावशाली, सामर्थ्यवान, बाहुबली, धनबली व्यक्ति हत्या और हिंसा को जायज ठहरा रहा है। वह साम, दाम, दण्ड, भेद नीति का सहारा लेते हुए इंसान को प्यार-मुहब्बत से बलि का बकरा बना रहा है।

सुंदरता के अपने मायने हैं/ कसाई छांटता है
सुंदर बकरी/मन ही मन बोलता है
मन ही मन तोलता है/कसाई उमेठता है उसके
कान/बकरी म्याऽऽऽकरती है बहुत सही है
बकरी/बहुत खुश है कसाई/
कसाई बैठाता है रिक्शे पर गोद में बिठाता है
बकरी प्यार से/कसाई सब कुछ जानता है
बकरी कुछ भी नहीं जानती/
बकरी के कान पर बैठ जाती है मक्खी
बकरी संवेदनशील है/कसाई उससे भी अधिक

संवेदनशील है
कसाई भगाता है मक्खी/हल्के से मलता है
कान/बकरी सोचती है दुनिया का सबसे नेक
आदमी मेरे पास है।(१३)

दूसरे काव्यसंग्रह 'भूमिकाएं खत्म नहीं होतीं' की कविताएं भी विभिन्न भावबोधों और संवेदनाओं पर आधारित हैं। हरीश्चंद्र पाण्डे की ऐतिहासिक दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म और अन्वेषण पूर्ण है। वे वर्णमालाओं की उत्पत्ति के संबंध में विवेक पूर्ण दृष्टि का उल्लेख करते हैं। मानव के विकास में प्रकृति की भूमिका को सर्वोपरि मानते हुए उनका मानना है कि मानव की तरह वर्णमालाओं के उद्भव और विकास में कई हजारों वर्ष लगे होगें। 'क्या पता किसी काट ली गयी जुबान ने दिया हो 'ल'/अचूमें होठों ने दिया हो 'प'/क्या पता अभावों के व्योम से ही बनी हों/सारी भाषाओं की वर्णमालाएं।.... जाने कितने लोग रहे होंगे/कितने दिनों तक/शब्दों को सुनने ही से वंचित / न सुनने ने भी दिय होंगे कितने-कितने शब्द/एक दिन में नहीं बन गये अक्षर/ एक दिन में नहीं बन गयी वर्णमाला।'(१४) कहने का आशय यह कि सर्जन का पथ जितना ही दुरूह और मुश्किल होता है, संहार का कार्य उतना ही सुगम और आसान। आजकल की बढ़ती हुई संहारक प्रवृत्ति से हमें बचना चाहिए।

'अखबार पढते हुए' कविता आज के समय और समाज पर एक टिप्पणी है/ आत्महत्या, हत्या, डकैती, हिंसा, दुर्घटनाएं आदि समाचार पत्रों की सुर्खियां बन गई हैं/ 'ये कल की तारीख में लोगों के मारे जाने के समाचार नहीं/ कल की तारीख में मेरे बच कर निकल जाने के समाचार हैं।' (१५) इसी प्रकार 'पानी' कविता भी मनुष्य के वजूद की तरफ इशारा करती है। मृत्यु के बाद दाह संस्कार के समय अग्नि इंसान के अंदर के पानी से बराबर संघर्ष करती है। 'देह अपना समय लेती ही है/निपटाने वाले चाहे जितनी जल्दी में हों/भीतर का पानी लड़ रहा है बाहरी आग से/घी जौ चन्दन आदि साथ दे रहे हैं आग का/पानी देह का साथ दे रहा है।' (१६) यहां रहीम की पंक्तियां याद हो उठती है 'रहिमन् पानी राखिए, बिन पानी सब सून। पानी गए न उबरै मोती, मानूष, चून।'

'बुध्द मुस्कराये हैं', 'बैठक का कमरा', 'सोलह की उम्र', 'काम की चीज', एवं अन्य कविताएं भी दैनिक जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों, समसामयिक प्रसंगों, घटनाओं, स्मृतियों आदि की संवेदनाओं को व्यक्त करती हैं। हरीश्चंद्र पाण्डे की कविताओं की समीक्षा करते हुए परमानंद श्रीवास्तव की आज की कविता पर टिप्पणी - 'कविता के सामने आज और बड़ी चुनौतियां हैं। जीवन-राग भी अब पहले की तरह सहज, स्वतःस्फूर्त या असंदिग्ध नहीं रह गया है। एक उत्तर-औपनिवेशिक समय में स्मृतियां भी महज रूढ़ि या काव्यरूढ़ि जान पड़ेंगी। जिनके पास नये मौलिक पर्यवेक्षण का साहस ही नहीं, उसे परिप्रेक्ष्य देने का आलोचनात्मक विवेक भी है, उन्हें कविता ओर जीवन की नई अज्ञात कठिनाइयों की भी थाह लेनी चाहिए।'(१७)

हरीश्चंन्द्र पाण्डे की कविताओं में मूलतः प्रकृति, प्रेम, मध्यवर्गीय जीवन के राग-विराग, नारी-विमर्श, आदि का चित्रण हुआ है लेकिन वे अपने समय के राजनीतिक एवं समसामयिक उभरते ओर गिरते हुए तापमान से भी भलीभांति परीचित हैं। वे समय के बिगड़ते हुए तापमान को स्थिर रखने और मनुष्य की अस्मिता को बचाए रखने के लिए मानवीय मूल्यों की वकालत करते हैं।

संदर्भ - सूची

१,२,३,४,५ - हरीश्चंद्र पाण्डे -
एक बुरुंश कहीं खिलता है, (काव्यसंग्रह) पृष्ठ ९, १३,१७,२१,३२
६ - परमानंद श्रीवास्तव -
कविता का उत्तर जीवन पृ. १६७..
७,८ - हरीश्चन्द्र पाण्डे -
एक बुरुंश कही खिलता है, पृ. ५०,५७
९ - परमानंद श्रीवास्तव -
कविता का उत्तर जीवन पृ. १६८..

१०,११ - हरीश्चन्द्र पाण्डे -
एक बुरुंश कहीं खिलता है, पृ. ६९, ७२
१२ - अरुण कमल -
संपादक-आलोचना, अंक - २९, अप्रैल-जून २००८
१३ हरीश्चन्द्र पाण्डे -
एक बुरुंश कहीं खिलता है, पृ. ८७, ८८
१४, १५, १६ - हरीश्चन्द्र पाण्डे -
भूमिकाएं खत्म नहीं होती (काव्यसंग्रह) पृ. ११-१३, ४, १५
१७ - परमानंद श्रीवास्तव -
कविता का उत्तर जीवन पृ. १६९..

कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है। उसके लिए कल्पना की बड़ी जरूरत है। जिस अधिक यह शक्ति होगी वह उतनी ही अधिक अच्छी कविता लिख सकेगा। कविता के लिए उपज चाहि नए-नए भावों की उपज जिसके हृदय में नहीं वह कभी अच्छी कविता नहीं लिख सकता। ये बातें प्रति की बदौलत होती हैं। इसीलिए संस्कृत वालों ने प्रतिभा को प्रधानता दी है। प्रतिभा ईश्वरदत्त होती अभ्यास से वह नहीं प्राप्त होती। इस शक्ति को कवि मां के पेट से लेकर पैदा होता है। इसी की बदौ वह भूत और भविष्यत् को हस्तामलकवत् देखता है, वर्तमान की तो कोई बात नहीं। इसी की कृपा से सांसारिक बातों को एक अजीब निराले ढंग से बयान करता है, जिसे सुनकर सुननेवाले के हृदयोदधि नाना प्रकार के सुख, दुख, आश्चर्य आदि विकारों की लहरें उठने लगती हैं। कवि कभी-कभी ऐ अद्भुत बातें कह देते हैं कि जो कवि नहीं है उसकी पहुंच वहाँ तक कभी हो ही नहीं सकती।

- महावीरप्रसाद द्विवेदी